मौर्यकालीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन

डॉ0 रूबी कुमारी*

मौर्य नरेशों ने भारत में एक ऐसे विशाल साम्राज्य का निर्माण किया जिसकी समता न तो उससे पहले और न बाद में मध्ययुग तक कोई भारतीय शासक कर सका। मौर्य वंश के साम्राज्य का विस्तार उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में महाराष्ट्र एवं पश्चिम में व्यास नदी के पूर्वी तट से लेकर पूर्व में बंगाल तक का विशाल भौगोलिक क्षेत्र सम्मिलित था। जब चंद्रगुप्त मौर्य ने पंजाब के गणराज्यों पर विजय पाई एवं सिकंदर के सेनापति सैल्यूकस को पराजित करके उससे संधि की तो उसकी पश्चिमी राज्य–सीमा ईरान की पूर्वी सीमा तक विस्तृत हो गयी। बिन्दुसार ने भी इस विशाल भू–भाग पर शासन किया। सम्राट अशोक ने कलिंग को पराभूत कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। अशोक के स्तम्भ एवं शिला अभिलेखो की स्थिति, उसके द्वारा निर्मित स्तूपों तथा उसके अभिलेखों में उल्लिखित उसके शासन के दो, प्रान्तों एवं जनपदों के अध्ययन के आधार पर यह निश्चित है कि उसकी राज्य सीमा उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक तथा पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक विस्तृत थी। सम्राट अशोक की मृत्यु (232 ई.पू.) के उपरान्त मौर्य साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हो गया। जिसके कई कारण थे। पश्चिम में इण्डो वैक्ट्रियन लोगों ने मौर्य साम्राज्य पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया एवं 185 ई.पू. के पहले मिनाण्डर ने गंगा घाटी को आक्रांत कर डाला। उसकी सेना मध्यमिका (चित्तौड) साकेत (अयोध्या) एवं पाटलीपुत्र तक पहुच गयी। कायर मौर्यवंशी राजा वृहद्रथ अपने राज्य की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ था। ऐसी विषम परिस्थिति में मौर्य सेनापति ब्राम्हण वंशी पुष्यमित्र शुंग ने उसकी हत्या करके मौर्य वंश एवं शासन का अंत करके शुंग वंश की स्थापना की। इसका शासन 185 ई.पू. से 46 ई.पू. तक रहा। अतः हम देखते है कि मौर्य साम्राज्य की स्थापना के न तो पूर्व और न ही पश्चात में ऐसे विशाल साम्राज्य की स्थापना हो सकी। विशाल मौर्य साम्राज्य अपने अद्वितीय आकार के कारण भारत वर्ष के सभी साम्राज्यों में सर्वश्रेष्ठ था। इसके अतिरिक्त शासन व्यवस्था और शासकों की जनकल्याण की भावना भी इस साम्राज्य के निर्माताओं की अपनी एक विशेषता रही। इस कारण मौर्य वंश और मौर्य–साम्राज्य का भारतीय इतिहास में एक प्रमुख स्थान है। मौर्यों के अधीन विशाल भौगोलिक क्षेत्र के राजाओं की धार्मिक प्रवृत्ति तथा विभिन्न धार्मिक समूहों, सामाजिक एवं आर्थिक संगठनों ने भी शिक्षा को अवश्य ही प्रभावित किया होगा। इसलिये इस क्षेत्र में एक रूपता की आशा नहीं की जानी चाहिये। विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों, तथा लिपियों की विभिन्न्ता ने भी इसमें योगदान किया।

***पी–एच0 डी0 इतिहास विभाग बी0 एन0 एम0 यू0, मधेपुरा**

भारतीय इतिहास में प्रथम बार चंद्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व में भारत की राजनीतिक एकता स्थापित हुई साथ ही राज्य में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक और बौद्धिक उन्नति हुई। शिक्षा भी प्रगति से वंचित नहीं रही। कहा जाता है कि उसने तक्षशिला में आचार्य चाणक्य से दण्डनीति की शिक्षा पायी थी। चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने जीवन के अंतिम समय में जैन आचार्य "भद्रबाहु से जैन धर्म की दीक्षा लेकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और जैन तीर्थ क्षेत्र "श्रवण वेलगोला" में उपवास द्वारा अपना शरीर त्याग दिया था। उसके बाद उसका पुत्र बिन्दुसार 298 ई.पू. में मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने ऐन्टिओकस प्रथम से अंजीर, मदिरा और एक दार्शनिक को अपने पास भेजने का आग्रह किया था। जिससे यह स्पष्ट होता है कि उसके समय में विदेशों से विद्वानों को आमंत्रित कर विद्या के विकास में गति दी जाती थी।

बिन्दुसार के उपरान्त उसका पुत्र अशोक मौर्य साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। प्रारंभ में उसने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाई, और 270 ई.पू.में कलिंग पर आक्रमण किया। इस युद्ध में वह विजयी हुआ। कालांतर में उसने युद्ध विजय की नीति छोड़कर धर्मविजय की नीति अपनाई। अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया साथ ही अन्य धर्म सम्प्रदायों को भी संरक्षण दिया। अपने समय में उसने धार्मिक शिक्षा का काफी प्रचार किया।

बौद्ध अनुश्रुति के दिव्यावद्यान एवं पुराणों के अनुसार अशोक के बाद उसका पुत्र कुणाल गद्दी पर बैठा जो चरित्रवान और सुशिक्षित था। अशोक का अन्य पुत्र जालोक काश्मीर का स्वतंत्र शासक बन गया। मगध साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी साम्राज्यों में विभक्त हो गया पूर्वी मगध साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र थी एवं पश्चिमी मगध साम्राज्य की राजधानी उज्जयिनी थी। दशरथ और सम्प्रति समकालीन शासक थे। दशरथ पूर्वी एवं सम्प्रति पश्चिमी मगध साम्राज्य का शासक था। अशोक का एक अन्य पुत्र महेन्द्र था।

मौर्य काल में शिक्षा में स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत उपलब्ध है। सूत्र साहित्य मौर्यकालीन शिक्षा पर प्रकाश डालते हैं। धर्मसूत्रों में वर्ण एवं आश्रम धर्मो के संबंध में शिक्षा के क्षेत्र, अध्ययन के विषय, गुरू की आवश्यकताओं, उनके कर्तव्य, छात्रों के द्वारा पालन किये जाने वाले

नियमों, उनकी दिनचर्या तथा शिक्षकों के साथ उनके संबंध का विवरण दिया गया है। कल्पसूत्रों की रचना विभिन्न वैदिक चरणों और शाखाओं में हुई। इनमें से कई यज्ञ, विद्या की प्राप्ति और मेघा की वृद्धि के लिये भी विहित है। श्रोत सूत्रों के आधार ब्राह्मण ग्रंथ हैं। इनका संबंध इतना घनिष्ठ है जिससे यह विदित होता है कि श्रोत सूत्र ब्राह्मण ग्रंथों के व्यवस्थित एवं संक्षिप्त रूप है। आश्वालायन, सांख्यायन, मानव बौधायन, अपस्त, हिरण्यकेश्वि, कात्यायन एवं जैमिनी श्रोत सूत्र, में मुख्य चौदह वैदिक यज्ञों का उल्लेख है। शिक्षा से संबंधित संस्कारों जैसे अक्षरारंभ, यज्ञोपवीत, एवं समापवर्तन का वर्णन गृह्य सूत्रों में किया गया है। इसके अतिरिक्त इनमें छात्रों एवं शिक्षकों के कर्तव्यों का भी उल्लेख है। सम्प्रति हमें केवल बारह गृह्यसूत्र ही उपलब्ध है। जिनमें चार मुख्य है, जैसे आश्वालायन, बौधायन, आपस्तम्ब एवं पारस्कर गृह्यसूत्र शेष आठ गृह्यसूत्र गौण है जो चार मुख्य और प्राचीन गृह्यसूत्र है वै पांचवीं–चौथी सदी ई.पू. के रचे माने गये है।

धर्मसूत्र भी महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करते है। धर्मसूत्रों में चार प्रमुख माने जाते है। यथा, गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, एवं वशिष्ट धर्मसूत्र। इनकी रचना की तिथि निर्धारित करना अपेक्षा.त कठिन कार्य है। पाणिनी के अनुसार वैदिक चरणों में धर्मसूत्रों का भी अध्ययन किया जाता था। इनकी रचना चौथी सदी ईसवी पूर्व में हुई होगी। शेष जो तीन प्राचीन धर्मसूत्र है, संभव है इसी काल में रचे गये हो। इन धर्मसूत्रों में शिक्षा से संबंधित संस्कारों, छात्रों तथा शिक्षकों के कर्तव्यों तथा उनकी दिनचर्या का वर्णन है। इनमें महत्वपूर्ण बात का उल्लेख यह भी है कि राजा का संबंध शिक्षकों एवं छात्रों के साथ किस प्रकार होना चाहिये और शिक्षा के विकास के लिए किस प्रकार राज्याश्रय देना चाहिये।

व्याकरणग्रन्थ अष्टाध्यायी में व्याकरण के नियमों को समझाने के लिये पाणिनि ने तत्कालीन समाज में प्रचलित बातों एवं व्यवहारों के उदाहरण दिये है। यह ग्रंथ तात्कालीन भारतीय जीवन एवं संस्ति का कोष बन गया। इससे शिक्षा और विद्या संबंधी बातों पर भी प्रकाश पड़ता है। पाणिनि के पूर्व और उनके समय में चरण नामक प्राचीन वैदिक शिक्षण संस्थाये थीं। जिन पर उन्होंने प्रथम बार पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके नाम उदय, प्रतिष्ठा सदस्यता, छात्रों के प्रवेश, स्त्री छात्राएं, अध्ययन, अध्यापन, छात्रों के प्रकारों एवं ग्रंथ रचना आदि विषयों की अतिरोचक सामग्री हमें अष्टध्यायी से प्राप्त होती है। ग्रन्थों और शिक्षा संस्थाओं के नामकरण के विषय में महत्वपूर्ण नियम था जिसे तविध्यक कहा गया है। आचार्य के नाम से संस्था, शिक्षा और साहित्य के नामकरण की प्रथा थी। चरण और "तविषयका' का स्पष्ट परिचय प्राचीन भारतीय शिक्षा और साहित्य की रचना को समझने की कुंजी है। चरण और विद्यालय भी संघों के आदेश पर अपने संघटन

बनाते थे। अध्यापकों की कोटियां, छात्रों के प्रकार, चरणों की परिषदें, व्याख्यान, विवाद, विषयानु संधान, अध्ययन अध्यापन करने वालों के द्वारा प्रत्येक ग्रंथ का प्रसार एवं परम्परा की व्यवस्था का उल्लेख अष्टाध्यायी में किया गया है।

अष्टाध्यायी ऐसा ग्रंथ नही है,जिसका संकलन चरण साहित्य के ढंग पर या गुरूशिष्य परम्परा में संरक्षित शास्त्रीय ज्ञान को एकत्र कर दिया गया हो। वर्नल के अनुसार लगभग ढाई हजार वर्षा की दीर्घ परम्परा के बाद अष्टाध्यायी का पाठ जितना उपलब्ध है उतना अन्य किसी संस्त ग्रंथ का नहीं अष्टाध्यायी का महत्व मौर्यकालीन शिक्षा के अध्ययन के लिए इस .ष्टि से भी बढ़ जाता है कि प्राचीन साहित्यिक अनुश्रुतियों में पाणिनि का संबंध पाटलिपुत्र से दर्शाया गया है। गुणादय की वृहत्कथा से ज्ञात होता है कि पाणिनि आचार्य वर्ण के शिष्य थे नंद वंश के सम्राट से पाणिनि की मित्रता थी। सम्राट ने उनके गथ को सम्मानित किया। इसी प्रकार मंजुश्री मूलकल्प (8 वीं सदी) में नंदराजा के परममित्र पाणिनि ब्राहमण का उल्लेख है। राजशेखर (9 वी सदी) ने काव्यमीमांसा में उल्लेख किया है कि पाटलिपुत्र में शास्त्रकार परीक्षा हुआ करती थी। इस परीक्षा में वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, पिंगल, एवं व्याडि ने उत्तीर्ण होकर यश प्राप्त किया। पाटलीपुत्र की शास्त्राकार परीक्षा बाद तक भी चलती रही।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके उपदेशों के संग्रह की आवश्यकता लोगों को अनुभव हुई और इस प्रकार उनका प्रथम संग्रह राजगृह की प्रथम बौद्ध संगीति में हुआ। इसके बाद इसमें संग्रह जोड़े जाते रहे। वैशाली की द्वितीय बौद्ध संगीति में भी त्रिपिटक में संशोधन हुआ। पालि परम्परा के अनुसार बौद्ध–धर्म का ग्रंथ कथावत्थु अशोक के समय पाटलिपुत्र की तृतीय बौद्ध संगीति में निबद्ध हुआ। कथावत्थु के वर्तमान संस्करण को तृतीय शताब्दी ई.पू. में एक साथ पूरा रचा हुआ नहीं माना जा सकता है। विनयपिटक का मूल प्रतिमोक्ष में था और विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिमोक्षों का व्यापक साम्य उनकी प्राचीनता का द्योतक है। विभंग और खन्चक के विभिन्न साम्प्रदायिक संस्करणों में भी साम्य है। चुल्लवग्ग में पहली दो संगीतियों का उल्लेख है, तीसरी का नहीं। बुद्ध के निर्वाण के बाद की पहली शताब्दी में बौद्धधर्म का विकास हुआ, जिसके कारण इस युग के अंत में नाना सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। संघभेद के पूर्व का यह समस्त विकास निकायों में संरक्षित है। बुद्ध को सिद्ध मानव के रूप में न देखकर लोकावतीर्थ भगवान् के रूप में देखने की प्रवृत्ति तथा रीतिबद्ध, सूचीबद्ध और पारिगणित के रूप में धर्म का प्रतिपादन एवं पारिभाषक पदावलि के द्वारा उसके परिस्त व्याख्यान की प्रवृत्ति युद्ध से परवर्ती काल की ओर संकेत करती है। मूल बौद्ध दर्शन के ज्ञान के लिए अभिव्यक्ति भाव और विचारों में परिवर्तन की इन प्रवृतियों को निकायो में खोजना

आवश्यक है। त्रिपिटक में समय समय पर परिवर्तन होते रहे और यह परम्परा कनिष्क के समय तक भी चलती रही। काश्मीर के कुण्डलवन में कनिष्क के समय चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन में त्रिपिटकों को पुनः व्यवस्थित किया गया एवं उन पर संस्त में भास्य लिखा गया। अनुमान किया जाता है कि गाथाओं वाला अंश पालि त्रिपिटक का सर्वप्राचीन अंश है। भूतकालीन की कथाएं प्राक मौर्यकालीन है और वर्तमान कथाएं मौर्यकालीन समाज को प्रतिबिंबित करती है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार जातक कथाओं को वर्तमान स्वरूप सातवाहन काल में मिला परन्तु इस विचार की कटु आलोचना की गई है। दीर्थ, मज्झिम, संयुक्त, एवं अंगुत्तर निकायो तथा विनयपिटक प्राक् मौर्यकालीन समझे जाते है। जातक कथाओं में तात्कालीन शिक्षा पद्धति के संबंध में रोचक विवरण मिलते है। उनमें आश्रमों की स्थिति, उनके संगठन, कुलपति, अध्यापकों की विभिन्न श्रेणियों, शिक्षा के विषयों छात्रानुशासन, और दक्षिणा आदि पर अधिक प्रकाश पड़ता है। सूत्रपटक, विनयपिटिक और अभिधम्म पिटक में सूत्र पिटक सबसे प्राचीन है और इसमें गौतम बुद्ध के सिद्धांत और उनके उपदेश संग्रहित है।

अभिधम्म पिटक में जीवन की अवस्थाओं, शारीरिक गुणों, तत्वों, और अस्तित्व के कारणों आदि पर विचार विमर्श किया गया है। पिटकों से मौर्यकालीन शिक्षा के स्वरूप से संबंधित जानकारी मिलती है। विद्या के विभिन्न विषयों की गणना में "पुराण' का उल्लेख अध्ययन के विषय के रूप में प्राचीन साहित्य में हुआ है। उत्तर वैदिक काल में पुराण ज्ञान की शाखाओं के रूप में जाने जाते है। पुराण का अर्थ "प्राचीन" है। इसके प्राचीन आख्यानों का अध्ययन शिक्षा ग्रहण करने के लिए किया जाता था। मूल पुराण के स्वरूप के बारे में हमें ज्ञान नहीं है। आरंभ में पुराण केवल एक था। परन्तु बाद में इसके कई भाग हो गए और उनमें विभिन्न विषयों को समाहित किया गया, जैसे प्राचीन आख्यान काल्पनिक कथाएं एवं भौगोलिक बातें। कुछ प्राचीन धर्मसूत्रों में "पुराण' का उल्लेख मिलता है। संभवतः यह वही पुराण है। जिसका उल्लेख उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आरंभ में पुराण संयुक्त रूप में विद्यमान था। परन्तु आगे चलकर उसकी स्वतंत्र शाखायें हो गई। मुख्य पुराण अठारह हैं और इतनी ही संख्या उपपुराणों की भी है। इनमें प्राचीन गुरूकुलों एवं ऋषियों का वर्णन है। गुरूकुलों में अध्ययन करने वाले छात्रों, उनके दैनिक जीवन, अध्ययन के विषय, शिक्षण पद्धति तथा छात्रों द्वारा गुरूओं को दी जाने वाली दक्षिणा के भी उल्लेख मिलते हैं।

सामान्यतः यह माना जाता है कि बाल्मीकि रामायण के वर्तमान संस्करण की रचना ई.पू. द्वितीय शताब्दी से ई. की दूसरी सदी तक हुई। इसका सीमा क्षेत्र राम के जीवन तक ही सीमित है। और उन्हीं से संबंधित आख्यानों का इसमें

निरूपण है। शिक्षा के अध्ययन के क्रम में रामायण के महत्व को कम नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार लव–कुश की शिक्षा बाल्मीकि के आश्रम में हुई थी। इस क्रम में हमें शिक्षा के संबंध में अनेक बातों का पता चलता है। जैकोबी का मन्तव्य है कि महाभारत के आख्यक पर्व में रामोपारूयान बाल्मीकि रामायण पर आधारित है। इन संदर्भो से प्रमाणित होता है कि रामायण और महाभारत में निकट का संबंध है। व्यास द्वारा रचित "जयकाव्य" नामक "अष्ट साहित्रक संहिता" अपनी रचना के उपरान्त परिवर्धित होकर अपने मूलकलेवर से त्रिगुणा वृद्धि पाकार "चैतुर्विशनि साहस्त्री संहिता" बन गई। इसके कलेवर का विस्तार इतने से ही अवरूद्ध नहीं हुआ क्योंकि यह एक जीवंत महाकाव्य था। अवान्तर काल में इसमें अनेक आख्यान जोड़े जाते रहे जिनका संबंध महाभारत युद्ध या कुरू राजाओं से था। इसमें धर्म एवं नीति संबंधी बातें भी प्रसंगवश जोड़ी गयी।

इस प्रकार भारत महाभारत बन गया। ईसा की पांचवी सदी तक यह ग्रन्थ तक यह ग्रन्थ शत साहिस्त्रिक संहिता बन गया। इस प्रकार व्यास रचित जयकाव्य अपने मूल रूप में बारह गुणा वृद्धि पा चुका है।

महाभारत में कलेवर में मुख्य रूप से दो कालों में वृद्धि हुई. प्रथम मौर्यकाल में और द्वितीय गुप्त काल में। इसकी रचना का मुख्य भौगोलिक में संस्ति का मुख्य केन्द्र था। महाभारत में शिक्षा संबंधी अनेक बातों का उल्लेख है, जैसे गुरुकुलों की व्यवस्था अध्यापकों का आचरण, शिष्यों की संख्या, अध्ययन के विषय, छात्रों एवं शिष्यों की दिनचर्या, छात्रों एवं शिक्षकों के पारस्पारिक संबंध एवं राजाओं द्वारा दिया गया गुरुकुलों को संरक्षण। मौर्यकालीन शिक्षा के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाला महाभारत एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

अनुमान किया जाता है कि चौथी सदी ई.पू. के अंतिम चरण में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की। जैसा कि फलीट, जैकोबी और मेयर का यही अभिमत है। टॉमिस का कहना है कि इसकी तिथि अनिश्चित है। जौली, विण्टरनीज, कीथ, के, नाग एवं प्राणनाथ आदि इसको कौटिल्य की रचना नहीं मानते है। इस विचार का खंडन जायसवाल, एन.एन. झा, आर, भण्डारकर, पी.बी. काणे, के.ए. नीलकान्त शास्त्री, एवं डी.डी. कौशाम्बी आदि विद्वानों ने किया है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के आरंभ में इसके प्रथम अधिकरण में विद्या समुद्देश्य पर विचार किया है। जिसमें विद्या विषयक बातों का उल्लेख है। उन्होंने प्रतिपादित किया है कि आन्धीक्षकों यानि तर्क शास्त्र सभी विद्याओं में प्रदीप के समान है एवं यह सभी कार्यों का साधन तथा सभी धर्मों का आश्रय है। इसी प्रकार त्रियी स्थापना के क्रम में उन्होंने वेदों के महत्व पर प्रकाश डाला है और वेदांगो पर भी। उन्होंने चारों वर्गों के द्वारा विद्या ग्रहण संबंधी बातों एवं ब्रह्मचारी के कार्यो

का उल्लेख किया है। वे यह मानते है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता उन सभी विद्याओं की समृद्धि राज्य शक्ति पर निर्भर है। वृद्ध संयोग नामक अध्याय में वृद्धों की संगति, राजकुमारों की शिक्षा एवं उनकी दिनचर्या का उल्लेख किया गया है क्योंकि प्रजाहित के लिए राजा का विद्याविनीत होना परम आवश्यक है। कौटिल्य यह मानते है कि विद्या प्राप्त करने और अपने में अनुशासन लाने का फल है इन्द्रिय जय। कौटिल्य ने प्रजा का मनोरंजन करने वाले विभिन्न लोगों का उल्लेख किया है, जो विभिन्न कलाओं में प्रशिक्षित होकर यह कार्य करते थे। उनकी मान्यता है कि ग्रामों में गायक, वादक और नट अपनी कला दिखाकर .षि आदि कार्यों में बाधा उत्पन्न करते है। कौटिल्य का विचार है कि राजा को शिक्षकों से कर ग्रहण नहीं करना चाहिए।

मौर्यकालीन आद्वत जिसके चौकोर है। इनके केवल ऊपरी भाग चिन्हित है एवं पृष्ठभाग प्रायः सादे है। कौटिल्य ने मुद्रा बनाने की विधियों का उल्लेख किया है तथा धातु के मिश्रण का भी उल्लेख किया है। इनके अध्ययन से हम स्वर्णकारों की व्यवसायिक शिक्षा का ज्ञान मिलता है। यूनानियों के भारत आक्रमण के साथ ही सिक्के बनाने की कला की एक विधि का प्रवेश भारत में हुआ। वह है ढले हुए सिक्के बनाने की कला। पश्चिम भारत में हिन्द्र यवन शासको ने अपने सिक्के निकाले जो आद्रत सिक्कों की तुलना में अधिक कलात्मक है। उन्हीं के अनुकरण पर भारतीय सिक्के भी गोल आ.ति के बनने लगे और उन पर मुद्राभिलेख उत्कीर्ण कराए जाने लगे। सिक्कों पर मानव आ.तियां भी बनने लगीं। भारतीय मुद्राशास्त्र के इतिहास में यह एक क्रांतिकारी कदम था।

मूल स्रोतों का भाषात्मक अध्ययन किया जाता है क्योंकि इसरो इनके मूल एवं वास्तविक अर्थ पर प्रकाश पड़ता है। इसके लिए हमें अभिलेख शास्त्रीय .ष्टिकोण अपनाना चाहिए, जिसका मुख्य उद्देश्य है काल और स्थान के आधार पर सूचना–सामग्री का गहन अध्ययन। अभिलेख शास्त्रीय .ष्टिकोण को अपनाने के साथ –साथ उस युग के व्यक्ति विशेष के जीवन और उनकी विचारधाराओं को भी अध्ययन में रखना चाहिए यथा उनके नाम, उपाधि, व्यवसाय एवं कार्यों का विवरण। ऐसे विशेष महत्व के लोग अपने युग की विचार धाराओं को प्रभावित करते हैं, उनमें परिवर्तन लाते हैं एवं घटनाओं को मोड़कर नयी दिशा देते हैं तथा समय की गति को पहचानकर उसके अनुसार कार्य करते है। मौर्यकालीन शिक्षा को हम पाणिनि, कौटिल्य, अशोक व पतंजलि के कार्यों एवं विचारधाराओं को समझे बिना पूर्ण रूप से न तो समझ सकते है और न इसका लेखा–जोखा प्रस्तुत कर सकते है। मुख्य स्रोतो की व्याख्या के उपरांत गौण व्याख्या पर ध्यान देना चाहिए, जिसका संबंध रचनात्मक .ष्टिकोण से है।

सूचना सामग्री को एकांगी रखकर किसी विषय को नहीं समझा जा सकते है। मौर्ययुगीन शिक्षा का हम पूर्ण अध्ययन केवल शिक्षक या छात्र, अध्ययन

के विषय, अध्यापन की पद्धति केवल शिक्षा को शिक्षक एवं छात्रों की दिनचर्या या उनके भरण–पोषण के उपायों का अलग–अलग अध्ययन करके नहीं समझ सकते है। इसके लिए हमें इन सबों का अध्ययन करना आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मुखर्जी राधाकुभुद, चन्द्रगुप्त मौर्य एंड हिज टाइम्स, पृष्ठ 42–43
2. शास्त्री, नीलकंठ, दि एज ऑफ द मौर्यान एण्ड द नन्दाज, पृष्ठ 172
3. मुखर्जी, राधामुभुद, अशोक पृष्ठ 16
4. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, पृष्ठ 55
5. कौटिल्य, अर्थशास्त्र 1.2
6. मुखर्जी, राधाकुभुद, अशोक 189–191